RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC-II/CPM/09/KPHO/2014-17
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

जून-2016 | वर्ष - 08 | अंक : 05 | मूल्य : 5/-

अध्याय : 4 एकता का विघटन

हिन्दुओं को एकता के विध्वंस की शिकायत करने से पूर्व उन्हें इस बारे में सुनिश्चित होना चाहिए कि जिस एकता पर वे जोर दे रहे हैं वह विद्यमान भी है या नहीं। पाकिस्तान और हिंदुस्तान के बीच क्या एकता है?

जो हिंदू एकता के हामी हैं वे मुख्यतः इस तथ्य पर भरोसा करते हैं कि जिन क्षेत्रों को मुसलमान भारत से पृथक करना चाहते हैं, वे सदैव भारत का अंग रहे हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से निश्चय ही यह सत्य है। यह क्षेत्र उस समय ह्वेनसांग ने अपनी डायरी में यह उल्लेख किया था कि भारत पांच विभागों में विभाजित था। यदि उनकी भाषा में ही कहा जाए तो यहां पांच इंडीज थे – 1. उत्तरी भारत 2. पश्चिमी भारत, 3. मध्य भारत, 4. पूर्वी भारत, 5. दक्षिणी भारत और इन पांचो विभागों में 80 रियासतें थीं। ह्वेनसांग के अनुसार उत्तरी भारत में पंजाब था, जिसमें कश्मीर और उसके आसपास के पहाड़ी राज्य तथा सिंध–पार का समस्त पूर्वी अफगानिस्तान शामिल था और सरस्वती नदी के पश्चिम तक के वर्तमान सिस–सतलज राज्य शामिल थे। इसी तरह उत्तरी भारत में काबुल, जलालाबाद, पेशावर, गजनी और बन्नू के जिले शामिल थे, जिन पर कपिसा के शासक का शासन था, जो हिंदू क्षत्रिय था और जिसकी राजधानी संभवतः काबुल से 27 मील दूर स्थित चारीकार थी। खास पंजाब में तक्षशिला के पर्वतीय जिले सिंहपुरा, उरासा, पुंछ और राजौरी शामिल थे जो कश्मीर के राजा के शासन में थे, जबकि सारा मैदानी क्षेत्र, जिसमें मुलतान और शोरकोट शामिल थे, लाहौर के समीप बर्की अथवा संगला के शासक के अधीन थे। जिस समय ह्वेनसांग अपनी तीर्थयात्रा पर आए तब भारत की उत्तरी सीमा का उपरोक्त विस्तार था। परंतु जैसा कि प्रोफेसर टोयनबी का कथन है –

"हमें 'ऐतिहासिक भावना' के मामले में सतर्क रहना चाहिए, अर्थात उन स्थितियों को लेकर जो कभी विद्यमान थीं अथवा जिनके होने की कल्पना की जाती है, परंतु जो इस समय वास्तविकता नहीं रह गई हैं। उन्हें अत्यंतिक उदाहरणों द्वारा तो बड़ी आसानी से प्रस्तुत किया जा सकता है। इतालवी अखबारों ने त्रिमोली पर अधिकार को पितृभूमि को पुनः ले लेने की संज्ञा दी है, क्योंकि यह क्षेत्र कभी रोमन साम्राज्य का एक प्रांत था, और मकदूनिया के सम्पूर्ण क्षेत्र पर एक ओर यूनानी संकीर्णतावादियों का दावा रहा है, क्योंकि इसमें पेल्ला का स्थान भी है जो ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी में सिकंदर महान की स्थली था, और दूसरी ओर बलगेरियनों का दावा है, क्योंकि ठीक दूसरी ओर के कोने में ओचरिदा स्थित है, जो दसवीं शताब्दी में बलगेरियाई जारशाही की राजधानी रहा, हालांकि समय के प्रवाह ने परवर्ती परंपरा को उतना ही गहरे दफना दिया है जितना कि 'इमाथियन विजेता' की उपलब्धियों को, जिन पर यूनानी राष्ट्रवादी इतना दृढ़ आग्रह करते हैं।"

यही तर्क यहां भी लागू होता है। यहां भी कभी विद्यमान रही उन स्थितियों के आधार पर तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं जो अब वास्तविकता नहीं रह गई है और जिनमें बाद के उन तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया जाता जिन्हें इतिहास ने ह्वेनसांग के वापस लौटने के बाद के वस्तुतः एक हजार वर्षों के दौरान प्रस्तुत किया है।

यह सत्य है कि जब ह्वेनसांग आए थे तो न सिर्फ पंजाब, अपितु आज का अफगानिस्तान भी भारत का भाग था और इसके पंजाब और अफगानिस्तान के निवासी वैदिक अथवा बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। परंतु ह्वेनसांग के भारत से लौटने के बाद से क्या हुआ?

सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि पश्चिमोत्तर से भारत पर मुस्लिम आक्रांताओं ने हमला किया। भारत पर पहला मुस्लिम आक्रमण अरबों ने किया जिसका नेतृत्व मुहम्मद बिन कासिम ने किया था। यह हमला सन 711 में हुआ था और उसने सिंध पर विजय प्राप्त की। इससे पहले मुस्लिम आक्रमण का परिणाम देश पर स्थाई अधिकार के रूप में सामने नहीं आया, क्योंकि बगदाद के खलीफा को, जिसके आदेश और आह्वान पर यह हमला हुआ था, नौंवी शताब्दी के मध्य में सिंध के इस सुदूर प्रांत से अपना प्रत्यक्ष नियंत्रण हटाने पर बाध्य होना पड़ा था। इसके बाद सन् 1001 में गजनी के मुहम्मद के भीषण आक्रमणों का तांता लग गया। मुहम्मद की मृत्यु 1030 ई. में हो गई, परन्तु तीस वर्ष की अल्पवधि में ही उसने भारत पर सत्रह बार आक्रमण किया था। उसके बाद 1173 ई. में मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया। वह 1206 ई. में मारा गया। तीस साल तक गजनी के मुहम्मद ने भारत को रौंदा और तीस साल तक उसी तरह मुहम्मद गोरी भी इस देश को रौंदता रहा। उसके बाद चंगेज खान के मंगोल झुंडों ने धावे बोले। ये आक्रांता 1221 ई. में आए। तब उन्होंने भारत की सीमाओं पर ही आक्रमण किए, भीतर प्रविष्ट नहीं हुए। लेकिन बीस वर्ष बाद उन्होंने लाहौर पर धावा बोला और उसे लूटा। उन हमलों में से सर्वाधिक भीषण हमला 1898 में तैमूर लंग के नेतृत्व में हुआ। उसके बाद बाबर के रूप में एक नया आक्रांता उभरा, जिसने 1526 ई. में भारत पर हमला किया। दो और आक्रमण ही हुए। 1738 ई. में आक्रांता नादिर शाह के नेतृत्व में पंजाब पर चढ़ दौड़े। उनका यह आक्रमण नदी में आई भीषण बाढ़ या फिर सागर के रौद्र रूप जैसा था। उसके बाद 1761 ई. में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर हमला किया। उसने पानीपत में मराठों की सेनाओं को पराजित किया और हिंदुओं द्वारा मुस्लिम आक्रांताओं के हाथों गंवाए गए आधार को पुनः प्राप्त करने के लिए होने वाले प्रयासों की हमेशा के लिए कमर तोड़ दी।

मुस्लिम हमले मात्र लूटमार अथवा विजय की आकांक्षा से प्रेरित होकर ही नहीं किए गए थे। इनके पीछे एक और उद्देश्य भी था। मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर जो हमला किया, उसका स्वरूप दंडात्मक भी था। वह

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. इं. राम अवतार चौधरी , इं. के. के. लाल (बन्थरा) मा.छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश : सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख कानपुर मण्डल :
पुष्पेन्द्र गौतम हिन्दुस्तानी, मल्हौसी, औरैया, उ.प्र. मो.: 9456207206
फुरकान खान, मो. : 8081577681
राकेश समुन्द्रे, मो. : 9889727574
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर, एड. कमलेश, लखनऊ
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.-रामटौरिया, जिला-छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य :
दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001,
मो. : 09887512360, 0144-3201516
चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला-अलवर, मो.-09829855349
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें -
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा-नवीन मार्केट, कानपुर
खाता सं.-33496621020 • IFSC CODE-SBIN005307

सिंध सम्राट दाहिर को सजा देने के लिए हुआ, जिसने देवल में, जोकि सिंध का एक बंदरगाह था, पकड़े गए एक अरब जहाज को मुक्त करने से इन्कार कर दिया था। परंतु इस बात में भी कोई संदेह नहीं कि भारत में मूर्ति–पूजा और हिंदुओं के बहुदेववाद पर प्रहार कर यहां इस्लाम की स्थापना भी इन हमलों का एक उद्देश्य था। हज्जाज को भेजे गए एक पत्र में मोहम्मद बिन कासिम का यह उल्लेख है :

"राजा दाहिर के भतीजे, उसके योद्धाओं और प्रमुख अधिकारियों को ठिकाने लगा दिया गया हैं और मूर्तिपूजकों को या तो इस्लाम में दीक्षित कर दिया गया है अथवा उन्हें तबाह कर दिया गया है। मूर्तियों वाले मंदिरों के स्थान पर मस्जिद और अन्य इबादत–स्थल बनाए गए हैं, कुतबाह पढ़ी जाती है, अजान दी जाती है, ताकि निर्धारित घंटों पर इबादत हो सके। तकबीर और अल्लाह–हो–अकबर की सदाएं हर सवेरे–शाम गूंजती हैं।"

यह पत्र राजा के सिर के साथ भेजा गया था। इसे प्राप्त करने के बाद हज्जाज ने अपने सेनापति को निम्नलिखित पत्र भेजा था:

"इसके अलावा तुम सभी बड़े और छोटे को सुरक्षा दो। शत्रु और मित्र में भेद न करो। खुदा का कथन है कि मूर्तिपूजकों से कोई रियायत न बरतो, अपितु उनके गले काट दो। यह समझ लो कि यही महान अल्लाह का आदेश है। तुम्हें अभयदान देने के लिए तुरंत तैयार नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे तुम्हारा काम और बढ़ जाएगा। इसके बाद उन दुश्मनों के अलावा जो सामान्य सैनिक हैं किसी को न बख्शो।"

गज़नी के मुहम्मद ने भी भारत पर अपने अनेक हमलों को जिहाद छेड़ने की संज्ञा दी थी। मुहम्मद के इतिहासकार अल उतबी ने उसके हमलों के बारे में लिखा था :

"उसने मंदिरों में मूर्तियों को तोड़ा और इस्लाम की स्थापना की। उसने शहरों पर कब्जा किया, नापाक कमीनों को मार डाला, मूर्ति–पूजकों को तबाह किया और मुसलमानों को गौरवान्वित किया। तदुपरांत वह घर लौटा और इस्लाम के लिए की गई विजयों का ब्यौरा दिया और यह संकल्प व्यक्त किया कि वह हर वर्ष हिंद के खिलाफ जिहाद करेगा।

मुहम्मद गोरी भी भारत पर हमलों में उसी धार्मिक जोश से प्रभावित था। इतिहासकार हसन निजामी ने उसके क्रियाकलाप का विवरण इन शब्दों में दिया है :

"उन्होंने अपनी तलवार से हिंद को कुफ्र की गंदगी से साफ किया और पाप से मुक्त किया था उस सारे मुल्क की बहुदेववाद के कटंक से स्वच्छ किया और मूर्तिपूजा की अपवित्रता से पाक किया, और अपने शाही शौर्य और साहस का प्रदर्शन करते हुए एक भी मंदिर को खड़ा नहीं रहने दिया।"

तैमूर ने अपने संस्मरण में स्पष्ट किया है कि उसे किन कारणों ने भारत पर हमला करने को प्रेरित किया। वह कहता है :

"हिंदुस्तान पर हमलों का मेरा मकसद काफिरों के खिलाफ अभियान चलाना और मुहम्मद के आदेशानुसार उन्हें सच्चे दीन में धर्मांतरित करना है। (उस पर और उसके परिवार पर अल्लाह की दया और रहमत हो) उस धरती को मिथ्या आस्था और बहुदेववाद से पवित्र करना है। तथा मंदिरों और मूर्तियों का विध्वंस करना है, हम गाज़ी और मुजाहिद होंगे और अल्लाह की नजर में सहयोगी और सैनिक सिद्ध होंगे।"

भारत पर मुसलमानों के हमले भारत के विरूद्ध हुए आक्रमण तो थे ही, साथ ही वे मुसलमानों में पारस्परिक युद्ध भी थे। यह तथ्य इसलिए छिपा रहा है क्योंकि सभी आक्रांताओं को बिना किसी भेदभाव के सामूहिक तौर पर मुसलमान करार दिया जाता है। परंतु तथ्य यह है कि वे तातार, अफगान और मंगोल थे। मुहम्मद गजनी तातार था। मुहम्मद गौरी अफगानी था। तैमूर मंगोल था। बाबर तातार था, जबकि नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली अफगानी थे। अफगानों का भारत पर हमला करने के पीछे एक मकसद तातारों को तबाह करना था और मंगोल हमलावर तातारों व अफगानों को तबाह करना चाहते थे। उनका परस्पर प्रेम की भावना से संपुष्ट हुआ कोई ऐसा परिवार नहीं था जो मुस्लिम भाईचारे की भावना से एकजुट हो गया हो। वे एक–दूसरे के जानी दुश्मन थे और उनके युद्धों का मकसद एक दूसरे का सफाया करना भी था। मगर जिस बात को दिमाग में रखना महत्वपूर्ण है वह यह है कि अपने इन सभी विवादों और संघर्षों के बावजूद वे सभी इस एक सामूहिक उद्देश्य से प्रेरित थे – हिंदू धर्म का विध्वंस।

भारत पर आक्रमण करने वाले मुसलमानों ने जो तरीके अपनाए, वे भी उनके हमलों के मकसद को देखते हुए भारत के बाद के इतिहास की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

मुहम्मद बिन कासिम ने मज़हबी जोश के साथ जो पहला कार्य किया, वह था देवल नगर पर अधिकार कर लेने के बाद वहां के ब्राह्मणों का खतना कराना। परंतु जब उसे यह पता लगा कि वे इस तरह के धर्मांतरण पर आपत्ति उठा रहे हैं तो उसने सत्रह वर्ष से अधिक की आयु वाले सभी लोगों का वध करा दिया और यह आदेश दिया कि अन्य सभी को, जिसमें औरतें और बच्चे भी शामिल थे, गुलाम बना लिया जाए। हिंदुओं के मंदिरों को लूटा गया और लूट की इस प्रचुर संपदा के पांचवें हिस्से को अलग करके, जोकि सरकार का कानूनी हिस्सा था, शेष सारी संपदा सैनिकों में बराबर–बराबर बांट दी गई।

मुहम्मद गज़नी ने प्रारंभ से ही ऐसी योजनाएं अपनाई जिनसे हिंदुओं के हृदय में आतंक व्याप्त हो सके। सन् 1001 में राजा जयपाल को पराजित करने के बाद मुहम्मद ने आदेश दिया कि जयपाल को "सड़कों पर घुमाया जाए ताकि उसके बेटे और सरदार उसे लज्जा, कैद और अपमान की उस हालत में देख सकें और देश भर के काफिरों के दिलों में इस्लाम की ताकत का खौफ बैठ जाए।"

"काफिरों का संहार एक ऐसी बात थी जिसमें मुहम्मद को खास तौर के आनंद का अनुभव होता था। 1019 ई. में चांदराय पर किए गए एक हमले में अनेक काफिरों को मौत के घाट उतार दिया गया अथवा बंदी बना लिया गया और मुसलमानो ने लूट के माल को तब तक कोई महत्व नहीं दिया जब तक कि उन्होंने स्वंय को काफिरों तथा सूर्य और चंद्रमा के उपासकों के संहार से तृप्त नहीं कर लिया। इतिहासकार के बड़े सरल भाव से यह भी लिखा है कि हिंदू सेना के हाथी मूर्तियों स्वतः मुहम्मद के पास आ गए और उन्होंने इस्लाम धर्म की सेवा करना ही श्रेयस्कर समझा।"

हिंदुओं की बार–बार हत्याओं से, मुहम्मद बख्तियार खिलजी की बिहार–विजय की तरह, हिंदुओं की अपनी संस्कृति को गहरा आघात लगा। 'तबकाते–नसीरी से हमें यह जानकारी मिलती है कि जब उसने नुदिदया (बिहार) पर कब्जा कर लिया तो क्या हुआ:

"विजेताओं ने भयंकर लूटपाट की। वहां के अधिकांश निवासी ब्राह्मण थे, जिनके सिर मुंडे हुए थे। उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। बहुत भारी संख्या में पुस्तकें प्राप्त हुई, परन्तु उनके अर्थ स्पष्ट करने वाला कोई था ही नहीं, क्योंकि सभी लोग मार डाले गए थे, जबकि सारा किला और नगर ही अध्ययन का एक स्थान था।

इस मुद्दे पर उपलब्ध साक्ष्य का सारांश प्रस्तुत करते हुए डॉ. टाइटस ने कहा है :

"मंदिरों के विध्वंस और प्रतिमाओं को अपवित्र किए जाने के पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध हैं। हम देख चुके हैं कि मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध में बड़े योजनाबद्ध ढंग से विनाश की अपनी योजना को क्रियान्वित किया था। परंतु उसने राजस्व के मकसद से मुलतान के एक सुप्रसिद्ध मंदिर को छोड़ दिया था, क्योंकि यह मंदिर तीर्थयात्रियों का आवास स्थल था, जो प्रतिमा के सामने काफी बड़ी मात्रा में उपहार समर्पित करते थे। साथ ही उसने जहां इस मंदिर को अपनी धनलोलुपता को संतुष्ट करने के लिए खड़ा रहने दिया, वहीं उसने गौ–मांस का एक टुकड़ा प्रतिमा की गर्दन में बांधकर अपनी विद्वेष–भावना को भी उज़ागर किया।

"मिन्हाज–अस–सिराज यह भी बताता है कि मुहम्मद किस तरह से एक हजार मंदिरों तथा सोमनाथ के मंदिरों को विध्वस्त करने वाले तथा उसकी प्रतिमा को ले जाने का साहसिक कृत्य करने वाले के रूप में व्यापक तौर पर चर्चित हो गया था। उसका यह भी दावा था कि मूर्ति के चार टुकड़े कर दिए गए थे। उसका एक भाग गज़नी की जामा मस्जिद में जमा कराया गया, एक को उसने शाही महल के प्रवेश द्वार पर रखा और तीसरा भाग मक्का तथा चौथा मदीना भेजा गया।"

लेन पूल ने कहा है कि मुहम्मद गज़नी ने, जिसने यह संकल्प किया था कि वह हिंदुस्तान के काफिरों के खिलाफ हर वर्ष जिहाद करेगा और तब तक अपना मूर्ति–भंजन–अभियान चलाता रहेगा जब तक कि सोमनाथ का मंदिर अक्षत है। इसी विशेष उद्देश्य से उसने अपनी जीवन–लीला समाप्त होने से कुछ ही समय पूर्व मुलतान के अन्हलवाड़ा में तटवर्ती क्षेत्र के रेगिस्तान को पार कर भयानक चढ़ाई की और वह तब तक युद्ध करता रहा, जब तक कि उसने अंततोगत्वा इस सुप्रसिद्ध मंदिर को ध्वस्त नहीं कर दिया :

"वहां लाखों तीर्थ–यात्री एकत्रित होते थे, एक हजार ब्राह्मण इस देवालय में पूजन–वंदन करते थे और इसके कोष की रक्षा करते थे, सैकड़ों नर्तक और गायक उसके द्वार पर अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। इसके अंदर सुप्रसिद्ध लिंग था, जो पाषाण का एक स्थूल स्तंभ था। उस पर हीरे–जवाहरात जड़े हुए थे और वह रत्नजड़ित दीपाधार से सजे–धजे थे और इस देवालय को महिमामंडित करते थे। उसकी प्राचीरों पर काफिर ब्राह्मणों के झुंड एकत्रित रहते थे, जो उन विदेशी काफिरों के निष्फल दर्प का परिहास करते थे जिनके बारे में वे सोचते थे कि उन्हें सोमनाथ भगवान सुनिश्चित रूप से लील लेंगें। विदेशी निर्द्वंद्व दीवारों पर चढ़ गए। भगवान अपने सेवकों की प्रार्थनाओं पर भी मूक बना रहा। पचास हजार हिंदुओं ने अपनी आस्था के कारण यातना भोगी और इस पवित्र देवालय को सच्ची आस्था वालों ने सोल्लास लूटा। वह महान पाषाण ध्वस्त कर दिया गया और उसके खंडों को विजेता के महल की शोभा बढ़ाने के लिए ले जाया गया। मंदिर के द्वार गज़नी में लगाए गए और मूर्तिभंजकों को दस लाख पौंड मूल्य का खजाना पुरस्कार तुल्य प्राप्त हुआ।"

गज़नी के मुहम्मद द्वारा किया गया कृत्य एक पावन परम्परा बन गया और उसके बाद के आक्रांताओं ने उसका निष्ठापूर्वक पालन किया। डॉ. टाइटस के शब्दों में :

"मोहम्मद गोरी ने, जो मुहम्मद गज़नी का एक उत्साही उत्तराधिकारी था, अजमेर की विजय के दौरान मूर्तियों वाले मंदिरों के स्तंभों और आधारों को ध्वस्त किया और उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण करवाया और मकतब बनवाए और इस्लाम के नियम और कानून की प्रथाएं तैयार कर उन्हें स्थापति किया। दिल्ली नगर और उसके आसपास के क्षेत्रों को मूर्तियों और मूर्तिपूजकों से मुक्त कर दिया गया और देव–प्रतिमाओं के स्थान पर एक खुदा की इबादत करने वालों ने मस्जिद खड़ी कर दी।

"कहा जाता है कि कुतुबद्दीन ऐबक ने भी लगभग एक हजार मंदिरों को ध्वस्त कर उनके स्थान पर मस्जिदें खड़ी की थीं। उसी लेखक का कहना है कि उसने जामा मस्जिद दिल्ली का निर्माण कराया और उसे उन मंदिरों से प्राप्त हुए स्वर्ण तथा पाषाणों से सजाया जिन्हें हाथियों

द्वारा तोड़ा गया था। उसे उन शिलालेखों से भर दिया जिनमें कुरान के आदेश उत्कीर्ण थे। दिल्ली की इस मस्जिद के पूर्वी प्रवेश द्वार पर जो शिलालेख अंकित हैं, उनमें यह बताया गया है कि इस मस्जिद के निर्माण में 27 मंदिरों की सामग्री का उपयोग किया गया था।

"जामा मस्जिद की कुतुबद्दीन ऐबक द्वारा बनाई गई एक मीनार के मुकाबले अलाउद्दीन ने दूसरी मीनार बनाने के जोश में, अमीर खुसरो के कथनानुसार, पहाड़ियों से खोदकर पत्थर ही नहीं निकाले, अपितु सामग्री के लिए काफिरों के मंदिरों को भी तोड़ा। दक्षिण भारत की अपनी विजयों में भी अलाउद्दीन ने मंदिरों को उसी तरह तोड़ा जिस तरह उत्तर में उसके पूर्ववर्तियों ने तोड़ा था।

"सुलतान फिरोज शाह ने अपने फतुहात ने विस्तृत वर्णन करके यह बताया है कि उसने उन हिंदुओं के साथ किस तरह का व्यवहार किया जिन्होंने नए मंदिरों के बनाने का साहस किया था। जब उन्होंने पैगंबर के कानून के विरूद्ध जिसमें यह घोषित किया गया कि यह सब सहन नहीं किया जाना चाहिए, शहर (दिल्ली) और उसके पास–पड़ोस में ऐसा किया, तो मैंने खुदाई निर्देशों के तहत इन इमारतों को ध्वस्त कर दिया। मैंने काफिरों के उन नेताओं को मार डाला और अन्य को कोड़े लगवाकर तब तक दंडित किया कि जब तक उस बुराई की पूरी तरह उन्मूलन नहीं हो गया जिसमें काफिर और मूर्तिपूजक मूर्तियों की पूजा करते थे। खुदा के रहमोकरम से अब मुसलमान सच्चे खुदा के प्रति अपनी आस्थाओं का परिपालन करते हैं।"

हमने पढ़ा है कि शाहजहां के शासनकाल में भी उन मंदिरों को तोड़ा गया था जिन्हें हिंदुओं ने पुनः बनाना शुरू किया था और इस तरह हिंदुओं की धर्मपरायणता पर इस सीधे हमले का उल्लेख 'बादशाह नामा' में भी सगौरव दर्ज है :

"इतिहासकार कहता है कि बादशाह का ध्यान इस ओर दिलाया गया कि पिछले (अकबर के) शासन के दौरान अनेक मंदिरों का, जिनमें मूर्तियां हैं, बनारस में निर्माण शुरू हो गया था, जो अपूर्ण है। वह कुफ्र का सुदृढ़ केंद्र है। काफिर अब उन्हें पूरा करने के इच्छुक हैं। बादशाह सलामत, जो दीन के रक्षक हैं, ने आदेश दिया कि बनारस और उनकी पूरी सल्तनत में हर जगह उन मंदिरों को गिरा दिया जाए, जिनका निर्माण शुरू हुआ था। इलाहाबाद प्रांत से यह सूचना मिली है कि बनारस जिले में 76 मंदिरों को गिराया गया है।

मूर्तिपूजा को उखाड़ फेंकने का अंतिम प्रयास औरंगजेब के जिम्मे आया। 'माआथिर–ए–आलमगीरी' में हिंदू शिक्षा के उन्मूलन और उसके द्वारा मंदिरों का विध्वंस किए जाने का विस्तृत विवरण निम्नलिखित शब्दों में किया गया है :

"अप्रैल 1669 ई. में औरंगजेब को यह ज्ञात हुआ कि थट्टा, मुलतान और बनारस प्रांतो, खासतौर पर अंतिम में, मूर्ख ब्राह्मण अपनी पाठशालाओं में तुच्छ पुस्तकों की व्याख्याएं करते हैं और शिष्य, जिनमें मुसलमान और हिंदू दोनों हैं, लंबी दूरी तय कर वहां जाते हैं। परिणामतः दीन के निगहबान ने सभी प्रांतो के सूबेदारों को यह आदेश दिया कि वे काफिरों की पाठशालाओं और मंदिरों को निस्संकोच गिरवा दें, और उन्हें यह काम भी सौंपा गया कि वे मूर्ति–पूजा की शिखा और चलन को पूरी तरह रोक दें.................. । बाद में दीन के रक्षक को यह बताया गया कि सरकारी अधिकारियों ने बनारस के विश्वनाथ मंदिर को ध्वस्त कर दिया है।"

जैसा कि डॉ. टाइटस ने ही लिखा है :

"मुहम्मद और तैमूर जैसे आक्रांता बलात् धर्मांतरण के बजाए आर्थिक भावना अर्थात् लूट से धन–संग्रह, बंदी बनाए लोगों को गुलाम बनाने और धर्मांतरण की तलवार से काफिरों को दोजख भेजने पर ही ज्यादा ध्यान देते थे। परंतु जब शासक स्थाई तौर पर बस गए तो धर्मांतरितों का विश्वास पाना सर्वोच्च महत्व बन गया। राज्य की नीति का यह एक भाग ही बन गया कि सारे देश का धर्म इस्लाम ही बनाया जाए।

"कुतुबुद्दीन ऐबक ने, जिसकी ख्याति मंदिरों को तोड़ने में लगभग उतनी ही थी जितनी बारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण और तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ में मुहम्मद की थी, धर्मांतरण के लिए ताकत का सहारा भी अक्सर लिया था। एक दृष्टांत दिया जा सकता है : जब वह 1194 ई. में कोइल (अलीगढ़) पहुंचा तो तोपखाने में जो लोग चतुर और निपुण थे, उन्हें इस्लाम में दीक्षित कर लिया गया और अन्य लोगों को तलवार से मौत के घाट उतार दिया गया।

"धर्मांतरण के लिए बाध्य करने हेतु जो कठोर कदम उठाए गए, वे अनेकानेक थे। एक हृदय–विदारक मामले का उल्लेख फिरोजशाह के शासन–काल (1351–1388) का है। दिल्ली के एक ब्राह्मण पर आरोप लगाया गया कि वह अपने घर में मूर्तियों की पूजा करता है और यह भी कि वह मुस्लिम महिलाओं को काफिर बना रहा है। उसको पकड़ा गया और उसका मामला न्यायाधीशों, चिकित्सकों, बुजुर्गों और वकीलों के समक्ष पेश किया गया। उन्होंने उत्तर दिया कि कानून के प्रावधान सुस्पष्ट हैं। ब्राह्मण या तो मुसलमान बन जाए अथवा उसे जला दिया जाए। उसे सच्चे दीन से अवगत करा दिया गया और सही राह भी उसे दिखा दी गई, परंतु उसने उसे मानने से इंकार कर दिया। परिणामस्वरूप सुलतान के आदेश से उसे जला दिया गया और टिप्पणीकार ने लिखा है कि – कानून और इंसाफ के प्रति सुल्तान के गहन लगाव को देखो कि किस तरह से वह उसके आदेशों से तनिक भी नहीं डिगते।"

मुहम्मद ने मंदिर ही नहीं तोड़े, अपितु जिन हिंदुओं पर उन्होंने विजय प्राप्त की थी, उन्हें गुलाम बनाना भी उन्होंने अपनी नीति बना ली। डॉ. टाइटस के शब्दों में :

"इस्लाम के भारत से संपर्क में आने की प्रारंभिक अवधि में ही न केवल काफिरों का संहार और उनके मंदिरों का विध्वंस ही किया गया, अपितु, जैसा कि हमने देखा है, पराजितों में से अनेक गुलाम भी बना लिए गए। इन आक्रमण में लूट के माल का सरदारों और सामान्य सैनिकों के बीच बंटवारा एक विशेष आकर्षण था। प्रतीत होता है कि मुहम्मद ने काफिरों के संहार, उनके मंदिरों और पुजारियों की संपदा की लूट को अपने हमलों का एक विशेष उद्देश्य बना लिया था। बताया जाता है कि अपने पहले हमले में ही वह बहुत अधिक लूट का माल और आधे लाख सुंदर पुरूष और महिला हिंदुओं को गुलाम बनाकर गज़नी ले गया था।

1070 ई. में जब मुहम्मद ने कन्नौज पर कब्जा किया तो उसने इतनी अधिक संपदा लूटी और लोगों को बंदी बनाया कि "उनकी गणना करने वालों की उंगलियां थक गई।" 1019 ई. के आक्रमण के बाद गज़नी और मध्य एशिया में भारतीय गुलाम कितने आम हो गए थे, उसका विवरण करते हुए उस समय का एक इतिहासकार रहता है :

बंदियों की संख्या का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि हर गुलाम को दो से दस दिरहम तक बेचा गया। बाद में ये गज़नी ले जाए गए और सुदूर नगरों से व्यापारी उन्हें खरीदने आए और गोरे और काले धनी और निर्धन एक सांझी दासता में जकड़ लिए गए।

"सन् 1202 ई. में जब कुतुबुद्दीन ने कालिंजर पर अधिकार कर लिया मंदिरों को मस्जिदों में बदलने और मूर्तिपूजा का नाम निशान मिटाने के बाद पचास हजार लोग गुलामी के बंधन में जकड़े गए और मैदान हिंदुओं से ठसाठस भरा काला सा दिखाई देने लगा।"

जिहाद में जो हिंदू पकड़े जाते, गुलामी ही उनका प्रबन्ध बनती थी। परंतु जब युद्ध नहीं होता था तब भी हिंदुओं का अपमान मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा अपनाए गए हथकंडों का कम महत्वपूर्ण भाग नहीं था। अलाउद्दीन ने शासनकाल में चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ में कुछ इलाकों में हिंदुओं ने सुल्तान को काफी परेशान किया था। अतएव उसने उन पर ऐसे कर लगाने का फैसला किया जिससे वे पुनः विद्रोह करने का साहस न कर सकें।

"हिन्दुओं को इस स्थिति में ला दिया गया था कि वे सवारी के लिए घोड़ा नहीं रख सकें, न ही अच्छे वस्त्र पहन सकें और न ही जीवन का कोई और सुखोपयोग कर सकें।"

जजिया कर लगाए जाने के बारे में डा. टाइटस कहते हैं :

"हिंदुओं द्वारा जजिया का चुकाया जाना मुसलमानों, बादशाहों और शाहों के शासनकाल में भारत के विभिन्न भागों में न्यूनाधिक नियमित ही था, हालांकि कानून अक्सर मात्र सिद्धांततः ही लागू था, क्योंकि यह बादशाह की अपनी मांगों को लागू कराने की योग्यता पर ही पूर्णतः निर्भर था। परंतु अंततः यह महान अकबर के शासनकाल के नौंवे वर्ष (1655 ई.) में सारे मुगल साम्राज्य में हटा दिया गया, जबकि इससे पहले यह आठ शताब्दियों से भी अधिक तक भारत में मुस्लिम शासन का एक बुनियादी हिस्सा बना रहा था।

लेन पूल कहते हैं कि :

"हिंदुओं पर कर उनकी भूमि के उत्पादन में से आधा तक था और उन्हें अपनी सभी भैंसों, बकरियों और अन्य दुधारू पशुओं पर भी कर चुकाना पड़ता था। धनी और निर्धन सभी को प्रति एकड़ और प्रति पशु की दर से समान रूप से कर चुकाना होता था। कोई भी संग्राहक या अधिकारी, जो रिश्वत लेता था, उसे सरसरी तौर पर सुनवाई के बाद बर्खास्त कर दिया जाता था और उसकी बेंतों, चिमटों से पिटाई की जाती थी और मुश्कें और हथकड़ियां–बेड़ियां डालने जैसी कड़ी सजा दी जाती थी। नए नियमों को कड़ाई से लागू किया जाता था, ताकि एक राजस्व अधिकारी बीस विशिष्ट हिंदुओं को शिकंजे में कसकर उन पर घूसों से प्रहार करें और वसूली कर सकें। किसी भी हिंदू घर में सोना अथवा चांदी तो क्या, सुपारी, जिसे किसी खुशी के अवसर पर पेश किया जाता है, तक भी दिखाई नहीं देती थी, और असहाय बना दिए गए देशज अधिकारियों की पत्नियों को मुस्लिम परिवारों में नौकरी करके गुजारा करना पड़ता था। राजस्व अधिकारियों को प्लेग से भी ज्यादा घातक माना जाने लगा था और किसी का भी सरकारी लिपिक बनाया जाना मौत से भी बुरा माना जाता था, यहां तक कि कोई हिंदू ऐसे किसी व्यक्ति से अपनी बेटी का विवाह नहीं करना चाहता था।"

उस समय के इतिहासकार का कथन है कि ये राजाज्ञाएं इतनी कठोरता से लागू की गई थीं कि चौकीदार, खूट और मुकद्दिम घोड़े की सवारी नहीं कर सकते थे, हथियार नहीं रख सकते थे, न ही अच्छे कपड़े पहन सकते थे और पान भी नहीं चबा सकते थे....कोई भी हिंदू अपना सिर नहीं उठा सकता था....वसूली करने के लिए घूंसे मारा जाना, माल भत्ता जब्त किया जाना, कैद और बेड़ियां डाले जाने आदि सभी तरीके अपनाए जाते थे। यह सब कुछ सनक अथवा नैतिक विकृति मात्र का ही परिणाम नहीं था। जो कुछ किया जाता था, वह व्यापक तौर पर इस्लाम के रहनुमाओं की हाकिमों के रूप में सोच के अनुरूप होता था। सुलतान अलाउद्दीन ने मुस्लिम कानून के अंतर्गत हिंदुओं की स्थिति के बारे में काज़ी से सवाल किया तो काज़ी ने इन्हीं विचारों को भली–भांति स्पष्ट किया था। उसने कहा था :

"उन्हें खिराज (कर) अंदा करने वाला कहा जाता है, और जब राजस्व अधिकारी उनसे चांदी मांगे तो उन्हें बिना सवाल उठाए अति विनम्रता और आदर व्यक्त करते हुए सोना देना चाहिए। यदि अधिकारी उनके मुंह में मैला फेंके तो उन्हें संकोच किए बिना अपना मुख खोलकर उसे ले लेना चाहिए...... । मुंह में मैला फेंके जाने और इस विनम्र अदायगी से धर्म की अपेक्षित अधीनता ही व्यक्त होती है। इस्लाम का गरिमागान एक कर्तव्य है और दीन के प्रति अनादर दंभ है। खुदा उनसे नफरत करता है और

उसका कथन है कि उन्हें दासता में रखो। हिंदुओं को अपमानित करना खासतौर पर एक मज़हबी फर्ज है, क्योंकि वे पैगंबर के सर्वाधिक कट्टर दुश्मन है और क्योंकि पैगंबर ने हमें उनका कत्ल करने, उन्हें लूटने और गुलाम बनाने का आदेश यह कहते हुए दिया है – उन्हें इस्लाम में दीक्षित करो अथवा मार डालो और उन्हें गुलाम बनाओ और उनकी धन–संपदा को नष्ट कर दो। किसी अन्य धर्माचार्य ने नहीं, अपितु महान धर्माचार्य (हनीफ) ने जिसकी राह के हम अनुगामी हैं, हिंदुओं पर जज़िया लगाए जाने की इजाजत दी है, अन्य पंथों के धर्माचार्य भी किसी अन्य विकल्प की नहीं अपितु 'मौत या इस्लाम' की ही अनुमति देते हैं।"

मुहम्मद गज़नी के आने और अहमदशाह अब्दाली की वापसी के बीच जो 762 वर्षों की अवधि व्यतीत हुई उसकी यही कहानी है।

हिंदुओं को यह कहने का हक कहां तक है कि उत्तरी भारत आर्यवर्त का भाग है? हिंदुओं को यह कहने का कितना अधिकार है कि चूंकि एक बार यह क्षेत्र उनका था, अतएव हमेशा की भारत का अविभाज्य अंग रहना चाहिए? जो लोग पृथकता का विरोध करते हैं और अफगानिस्तान सहित उत्तरी भारत जो कभी भारत जो कभी भारत का भाग था और उस क्षेत्र के लोग बौद्ध अथवा हिंदू थे इस प्राचीन तथ्य से उद्भूत ऐतिहासिक भावना पर बल देते हैं, उनसे यह पूछा ही जाना चाहिए कि क्या 762 वर्षों से अनवरत मुस्लिम आक्रमणों की घटनाओं को, जिस उद्देश्य से वे किए गए थे और अपने मकसद को पूरा करने के लिए इन आक्रांताओं ने जो हथकंडे अपनाए थे, क्या उन्हें महत्वहीन मान लिया जाए?

इन आक्रमणों की जो अन्य परिणितियां हुई, उनके अलावा भी मेरी राय में उन उत्तरी क्षेत्रों की संस्कृति और स्वरूप में बहुत ठोस बदलाव आया है जिसे अब पाकिस्तान में शामिल करना प्रस्तावित है। स्थिति यह है कि इस क्षेत्र और शेष भारत के बीच एकता तो है ही नहीं, अपितु दोनों के मध्य वास्तविक विद्वेष एक तथ्य बन गया है।

इन आक्रमणों की पहली परिणिति उत्तरी भारत और शेष भारत की एकता का विखंडन थी। मुहम्मद गज़नी ने उत्तरी भारत की अपनी विजय के बाद इसे शेष भारत से अलग कर दिया और इस पर गज़नी ने शासन किया। जब एक विजेता के तौर पर मोहम्मद गोरी सामने आया तो उसने इसे पुनः भारत में मिला दिया और इस पर पहले लाहौर से और फिर दिल्ली से शासन किया। अकबर के भाई हाकिम ने काबुल और कंधार को भारत से पृथक किया। अकबर ने उसे पुनः उत्तरी भारत में मिला दिया। सन् 1738 में नादिरशाह ने इन्हे पुनः अलग कर दिया और यदि सिखों के उत्थान ने अवरोध पेश नहीं किया होता तो समूचा उत्तरी भारत ही भारत से कट गया होता। अतएव उत्तरी भारत एक रेलगाड़ी में लगे डिब्बे जैसा रहा है, जिसे संचालन की परिस्थितियों के अनुसार जोड़ा या अलग किया जा सकता है। यदि सादृश्य ही अपेक्षित हो तो अलसास लौरेन का उदाहरण दिया जा सकता है। अलसास लौरेन मूलतः जर्मनी का एक भाग था, जैसे कि शेष स्विट्जरलैंड और निचले देश थे। उसकी यही स्थिति 1680 ई. तक बनी रही, जब उसे फ्रांस ने ले लिया और फ्रांसिसी क्षेत्र में विलीन कर लिया। 1871 तक यह फ्रांस का भाग रहा। उसी वर्ष इसे जर्मनी ने अलग कर अपने क्षेत्र का एक हिस्सा बनाया। 1918 ई. में वह फिर जर्मनी से अलग होकर फ्रांस का हिस्सा बना और 1940 ई. में फिर जर्मनी का भाग बना दिया गया।

आक्रांताओं ने जो हथकंडे अपनाए थे, वे अपने पीछे भविष्य में आने वाले परिणाम छोड़ते गए। उनमें से ही एक हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की कटुता है, जो उन उपायों की देन है। दोनों के बीच यह कटुता इतनी गहराई से पैठी हुई है और न ही लोग उस कटुता को भुला पाए हैं। क्योंकि इन हमलों के साथ ही साथ मंदिरों का विध्वंस, बलात् धर्मांतरण, संपत्ति की तबाही, संहार और गुलामी तथा नर–नारियों और बालिकाओं का अपमान हुआ था, अतएव क्या यह कोई आश्चर्यजनक बात है कि ये हमले सदैव याद बने रहे हैं। ये मुसलमानों के लिए गर्व का स्त्रोत बने तो हिंदुओं के लिए शर्म का। परंतु इन बातों के अलावा, भारत का यह पश्चिमोत्तर कोना एक ऐसा मंच भी रहा है जिस पर एक निर्मम नाटक खेला जाता रहा। मुसलमानों के दल एक के बाद दूसरी लहर के रूप में इस क्षेत्र पर चढ़कर आते रहे और वहां से उन्होंने स्वयं को शेष भारत में छितराया। ये छोटी–छोटी धाराओं के रूप में शेष भारत में पहुंचे। समय आने पर वे अपनी सुदूरतम सीमाओं के पीछे भी हटे। जबकि वे वहां रहे तो उन्होंने भारत के इस पश्चिमोत्तर कोने में आर्य–संस्कृति पर इस्लामी संस्कृति का गहन प्रभाव भी छोड़ा, जिसने धार्मिक और राजनीतिक दोनों की दृष्टि से इसे एक सर्वथा अलग रंगत दे दी। मुस्लिम आक्रांता निस्संदेह हिंदुओं के विरूद्ध घृणा के गीत गाते हुए आए थे। परंतु वे घृणा का वह गीत गाकर और मार्ग में कुछ मंदिरों को आग लगाकर ही वापस नहीं लौटे। ऐसा होता तो यह वरदान माना जाता। वे ऐसे नकारात्मक परिणाम मात्र से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने इस्लाम का पौधा लगाते हुए एक सकारात्मक कार्य भी किया। इस पौधे का विकास भी उल्लेखनीय है। यह ग्रीष्म में रोपा गया कोई पौधा नहीं है। यह तो ओक (बांज) वृक्ष की तरह विशाल और सुदृढ़ है। उत्तरी भारत में इसका सर्वाधिक सघन विकास हुआ है। एक के बाद हुए दूसरे हमले ने इसे अन्यत्र कहीं की भी अपेक्षा अपनी 'गाद' से अधिक भरा है और उन्होंने निष्ठावान मालियों के तुल्य इसमें पानी देने का कार्य किया है। उत्तरी भारत में इसका विकास इतना सघन है कि हिंदू और बौद्ध अवशेष झाड़ियों के समान होकर रह गए हैं, यहां तक कि सिखों की कुल्हाड़ी भी इस ओक (बाज) वृक्ष को काट कर नहीं गिरा सकी। निस्संदेह सिख उत्तरी भारत के राजनीतिक स्वामी हो गए, परंतु वे उत्तरी भारत को वह आध्यात्मिक और सांस्कृतिक एकता पुनः प्रदान नहीं करा पाए जिससे वह ह्वेनसांग के पूर्व शेष भारत के साथ आबद्ध था। सिखों ने इसे भारत को वापस तो दिला दिया, परन्तु यह राजनीतिक तौर पर एलसास लौरेन के तुल्य अलग हो सकने वाला और सांस्कृतिक रूप से पराया–सा ही बना रहा और जहां तक शेष भारत का संबंध था, उससे दूर–सा ही रहा। वह कल्पनाहीन व्यक्ति ही होगा जो इन तत्थों पर ध्यान नहीं देगा अथवा इनकी विद्यमानता में इस बात पर आग्रह करेगा कि पाकिस्तान से तात्पर्य एक अखंड क्षेत्र का दो भागों में बंट जाना है।

पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच हिंदू कौन सी एकता देखते हैं? यदि यह भौगोलिक एकता है तो वह कोई एकता नहीं है। भौगोलिक एकता प्रकृति–पोषित एकता होती है। भौगोलिक एकता के आधार पर राष्ट्रीयता के निर्माण में यह अवश्य ही स्मरण रखना चाहिए कि यह 'प्रकृति सुझाती है, मानव निपटाता है' जैसा मामला है। यदि यह बाह्य बातों जैसे कि जीवन–संबंधी आदत और रिवाजों के मामले में हो, तो भी यह कोई एकता नहीं हैं। ऐसी एकता तो एक साझे परिवेश का परिणाम होती है। यदि यह प्रशासनिक एकता है तो भी इसे एकता नहीं कहा जा सकता। बर्मा का उदाहरण सामने है। अराकन और तेनासरिम पर येंदाबू की संधि के तरह 1826 ई. में अधिकार किया गया, पेगू और मातजिन को 1852 में कब्जे में लिया गया, जबकि 1886 में ऊपरी बर्मा को कब्जे में लिया गया। भारत और बर्मा के बीच प्रशासनिक एकता 1926 में स्थापित हो गई थी। यह प्रशासनिक एकता एक सौ दस वर्ष से भी अधिक तक रही। 1937 में यह गांठ काट दी गई जिसने दोनों को बांधा था और किसी व्यक्ति ने एक आंसू तक नहीं गिराया। भारत और बर्मा के बीच एकता कम आधारभूत तो नहीं थी। एकता यदि स्थाई स्वरूपवाली होनी है तो उसका बंधुता पर आधारित होना आवश्यक है, जो सजातीयता की अनुभूति से प्रेरित हो। संक्षेप में, यह निश्चित रूप से आध्यात्मिक होनी चाहिए। यदि इन तर्कों और विचारों के आधार पर तोला और परखा जाए, तो पाकिस्तान और हिंदुस्तान के बीच एकता एक कल्पित बात भर है। वास्तव में पाकिस्तान और हिंदुस्तान के बीच की अपेक्षा हिंदुस्तान और बर्मा के बीच अधिक आध्यात्मिक एकता है। और यदि हिंदु बर्मा के भारत से अलग होने पर आपत्ति नहीं करते तो यह समझ में आ पाना कठिन है कि हिंदु पाकिस्तान जैसे उस क्षेत्र के अलग होने पर आपत्ति कैसे कर सकते हैं जो शेष भारत से राजनीतिक तौर पर वियोज्य, सामाजिक तौर पर विद्वेषी तथा आध्यात्मिकता की दृष्टि से परकीय है।

साभार –
बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड – 15
पृष्ठ सं. 35 से 50
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

ई. के. के. लाल

प्रधानाचार्य / असिसटेन्ट

अप्रेन्टिस–शिप एडवाइजर, जी. आई. सी. आई., एटा

कालेश्वर दयाल

पी. ए.

कार्यालय मुख्य अभियन्ता राम गंगा सिंचाई विभाग, कानपुर, उ0 प्र0

युग निर्माता कबीर (1398–1575)

सन्त कबीर के जन्म स्थान तथा जन्म तिथि के बारे में अभी भी कोई प्रामाणिक सूचना उपलब्ध नहीं हैं। " कबीर चरित बोध " में इनका जन्म–स्थान वाराणसी और जन्मतिथि जेष्ठ पूर्णिमा सन् 1455 (सन् 1398) बतायी गयी है। इस कबीर पन्थी ग्रन्थ में घटनाओं का वर्णन जिस शैली में किया गया है, उससे उनके ऐतिहासिक होने में सन्देह है। इसके अतिरिक्त दूसरे कई लेखक इनके सम्बन्ध में कुछ दूसरी ही बात कहते हैं। बनारस गजेटियर में कहा गया कि कबीर का जन्म वाराणसी या उसके आस–पास के किसी स्थान में न होकर आजमगढ़ जिले के मोहल्ला बेलहर में हुआ था, जो आज भी वहां के पटवारी के कागजों में बेलहर पोखर के रूप में लिखा मिलता है। चन्द्रवली पांडये ने इसे "पक्की" खोज की संज्ञा देते हुए कहा है कि यही आगे चलकर जनता द्वारा "लहर तालाब" बना दिया गया होगा।

कुछ प्रामाणिक ग्रन्थों में कबीर के सम्बन्ध में कई घटनाएं पायी जाती है। नाभादास की रचना भक्तमाल में जो सन् 1585 में लिखी गयी थी कबीर के दृष्टिकोण का तत्कालीन सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख है। अबुल फजल लिखित " आइन–ए–अकबरी" में, जो अकबर महान के 42 वें वर्ष में सन् 1598 में लिखी गयी थी, कबीर के बारे में दो स्थानों–पृष्ठ 129 तथा 171 पर जिक्र मिलता है। इनमें कबीर को "मुवाहिद" अर्थात अद्वैतवादी कहा गया है। इनकी दो मजारें एक जगन्नाथपुरी तथा दूसरी रतनपुर (अवध) में भी बतायी गयी हैं। इसमें आगे लिखा है– " आध्यात्मिक दृष्टि का द्वार उनके सामने अंशतः खुला था और उन्होंने अपने समय के सिद्धान्तों का भी प्रतिकार कर दिया था। हिन्दी भाषा में धार्मिक सत्यों से परिपूर्ण उनके अनेक पद आज भी विद्यमान हैं। "कश्मीर के मोहसिन फानी द्वारा 17 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में लिखित फारसी इतिहास "दविस्ता" में कबीर के सम्बन्ध में कई बातें लिखी मिलती हैं जो अन्यत्र वर्णित घटनाओं में मिलती जुलती हैं। इसमें लिखा है– "कबीर जुलाहे और ऐकेश्वरवादी थे। कोई आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक मिले, इस इच्छा से वे हिन्दू साधुओं एवं मुसलमान पीर फकीरों, दोनो के पास गये। अन्त में जैसा कहा गया है, रामानन्द के शिष्य हुए। "इनके अतिरिक्त अन्य कोई प्रामाणिक ग्रंथों, जैसे सन्त तुकाराम के गाथा अभंग 3241, अनन्त दास लिखित "कबीर साहब जी की परचई" और सन् 1604 में पांचवें गुरु अर्जुन देव द्वारा संग्रहित गुरुग्रन्थ साहब" में सन्त कबीर के बारे में अनेक बातें कही गयी हैं, जो सत्य प्रतीत होती हैं। पर इनमें कहीं भी कबीर के जन्म स्थान और जन्म के सम्बन्ध में सूचना उपलब्ध नहीं हैं।

उपरोक्त तथा अन्य ग्रंथों में कबीर के जन्म–मरण के स्थान और तिथि के सम्बन्ध में जो परस्पर विरोधी बातें कही गयी हैं उनके अध्ययन से हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचते हैं। हाँ, सर्वमान्य तथ्य उभर कर सामने जरूर आता हैं कि कबीर ने अपने जीवन के अधिकांश भाग वाराणसी में व्यतीत किये और जीवन के कुछ अंतिम वर्ष मगहर में। उनका पालन–पोषण एक जुलाहा दम्पत्ति नीरु और नीमा द्वारा किया गया था। उनकी पत्नी का नाम "लोई" पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था। वे जुलाहे का काम करके अपना तथा अपने परिवार का भरण–पोषण करते थे। वे रामानन्द के साथ–साथ कबीर झूसी के शेख तकी के समकालीन थे जिसने उनके स्वतंत्र विचारों के चलते अनेक यातनाएं दी थीं। कबीर की मृत्यु–तिथि के बारे में भी बहुत मतभेद हैं। कुछ लोगों के अनुसार उनकी मृत्यु मगहर में 1575 में हुई थी।

कबीर पढ़े–लिखे नहीं थें। उन्होंने एक स्थान पर कहा है–मसि कागद छुओ नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ। कबीर ने जो ज्ञानार्जन किया, वह साधु–सन्त और पीर–फकीरों की संगति के द्वारा ही किया । उन्होंने एक दूसरे स्थान पर कहा है– मैं कहता अंखियन देखी, तू कहता कागद की लेखी । एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा है– कर विचार मन ही मन उपजी न कहीं गया न आया । कबीर की कविता में जो मिर्जापुरी और गोरखपुरी बोलियों की छाप है उसका मुख्य कारण उनका बहुत समय तक वाराणसी में रहना ही हो सकता है। उनके कुछ ग्रन्थों की हस्तलिपियां कैथी लिपि में हैं, पर उनके साहित्य में पंजाबी तथा खड़ी बोली के भी शब्दों का समावेश हुआ है। कुछ के अनुसार इसका मुख्य कारण या तो कबीर का भिन्न–भिन्न भाषा–भाषी साधु–सन्तों की संगति हो सकती है अथवा सम्पादकों की मनमानी।

कबीर के साहित्य में मात्रा की कमी–बेशी है। अलंकार का अभाव है, पर कविता में सन्देश मुख्य होता है, अलंकार गौण। उन्हें जनता को एक सन्देश देना था, वो भी जनता की भाषा में, सीधी–सादी शैली में। वे पिंगल के नियमों में बन्धकर रास्ता भूलने के लिए तैयार नहीं थे। फिर उनमें प्रतिभा, मौलिकता और गहराई की कमी नहीं थी। डॉ. राम कुमार वर्मा ने तो कबीर को एक उच्च कोटि का कवि ही नहीं बल्कि विश्व के एक महान कवि का दर्जा भी दिया है। उनका कहना है– "उनकी विरहिणी–आत्मा की पुकार" काव्य जगत में अद्वितीय है। रहस्यवाद के दृष्टिकोण से यदि उनकी "पतिव्रता का अंग" पढ़ा जावे तो ज्ञात होगा कि उनका कवित्व संसार के किसी भी साहित्य का श्रृंगार हो सकता है। "कबीर ग्रंथावली के सम्पादक डॉ. श्याम सुन्दर दास ने ग्रन्थ की भूमिका में लिखा हैं – रहस्यवादी कवियों में कबीर का ही स्थान सबसे ऊंचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है। "

किसी व्यक्ति के कृतित्व और व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन उसके युग के सन्दर्भ में ही हो सकता है। जिन दिनों कबीर अपने मत के प्रचार में लगे थे, देश के दो बड़े–बड़े सम्प्रदायों हिन्दू और मुसलमान में विभक्त था। मुस्लिम राज्य देश के एक बड़े भू–भाग पर स्थापित हो चुका था। काजी और मुल्ला अपेक्षाकृत ऊंचे स्तर से अपने धर्म–प्रचार में जुटे थे। राज्य धर्म रहने के अतिरिक्त इस्लाम, निम्न जातियों तथा अन्य प्रताड़ित हिन्दुओं की धार्मिक और सामाजिक समता देने के लिए तैयार बैठा था। उधर हिन्दू मतावलम्बी खासकर उच्च वर्णीय हिन्दू समाज पर अपने परम्परागत विशेषधिकारों और हितों की रक्षा के लिए वर्णाश्रम धर्म तथा जप–तप यज्ञ, तीर्थाटन के नियमों को और कठोर बनाने में संलग्न थे। हिन्दू धर्म एकछत्र धर्म नहीं रह गया था उसे आन्तरिक संघर्ष और विद्रोह का भी सामना करना पड़ रहा था। कबीर के ही समय या कुछ पहले, गुरु रामानन्द दक्षिण के अलवारों की भक्ति परम्परा को उत्तर भारत लाये और कबीर, रैदास, सेना, धना ये सभी सन्त कवि निम्न जाति के थे, अपना शिष्य बनाया। इनके अनुसार जो भक्ति मार्ग में आ गया उस पर वर्णाश्रम धर्म के नियम लागू नहीं होते। भक्ति मार्ग में श्रेष्ठता जन्म की नहीं भक्ति मार्ग की होती है। कबीर के समय में सूफीमत भी भारत में आ चुका था। सूफी इस्लाम के एकेश्वरवाद में विश्वास नही रखते थे। वे उपनिषद के विशिष्टद्वैत से अधिक नजदीक थे। इनके विचार अधिक उदार और आगे चलकर इन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों का सम्पूर्ण सम्मान प्राप्त किया।

रामानन्द दक्षिण के अलवारों की भक्ति परम्परा को उत्तर भारत लाये और कबीर, रैदास, सेना, धना ये सभी सन्त कवि निम्न जाति के थे, अपना शिष्य बनाया। इनके अनुसार जो भक्ति मार्ग में आ गया उस पर वर्णाश्रम धर्म के नियम लागू नहीं होते। भक्ति मार्ग में श्रेष्ठता जन्म की नहीं भक्ति मार्ग की होती है। कबीर के समय में सूफीमत भी भारत में आ चुका था। सूफी इस्लाम के एकेश्वरवाद में विश्वास नही रखते थे। वे उपनिषद के विशिष्टद्वैत से अधिक नजदीक थे। इनके विचार अधिक उदार और आगे चलकर इन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों का सम्पूर्ण सम्मान प्राप्त किया।

स्थिति को समझने और उससे जूझने की कबीर में विलक्षण शक्ति थी। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि हिन्दू–मुसलमानों के बीच जो मतभेद हैं, संघर्ष है उसके मुख्य कारण अन्धविश्वास और बाह्याडम्बर हैं, जबकि उनके मौलिक तत्व तो एक ही है। कबीर का भाषा पर असाधारण अधिकार था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तो उन्हें वाणी के डिक्टेटर मानते हैं। अतः कबीर ने अपनी "लुकाठी" के रूख को उधर मोड़ा और सन्त और गृहस्थ, हिन्दू और मुसलमान किसी को भी नहीं बख्शा। उन्होंने कहा कि नंगे रहने से मुक्ति मिलती होती तो वन के सभी हिरन स्वर्ग में होते। गंगा स्नान करने स्वर्ग मिलता तो उसकी सभी मछलियां जीवन–मरण के बन्धन से कभी मुक्त हो गयी होती। उनका कहना था कि जटा और दाढ़ी बढ़ाकर साधु "बकरा" भले हो जाये स्वर्ग के अधिकारी नहीं हो सकते, न ही मुंडन कराने से ही कुछ लाभ है। यदि कुछ होता तो दुनिया में एक भी भेड़ देखने को नही मिलती। असली चीज तो नाम हैं आसन मारि मंदिर में बैठने और पत्थर के पूजने में कुछ भी आने–जाने को नहीं। कबीर ने मुसलमानों को बेमानी रोज़ा–नमाज़, मुल्लाओं को ऊंची आवाज में नमाज पढ़ने और "सुन्नत" को इस्लाम धर्म का अभिन्न अंग मानने के लिए उन्हें आड़े हाथों लिया। उनका कहना था कि यदि खतना कराना इतना जरूरी था तो माँ के पेट में ही करा कर क्यों नहीं आये और औरतों को कैसे मुसलमान मानते हो ? वे तो उसके बिना हिन्दू और मुसलमान दोनों के घर में लगी। आचार्य द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'कबीर' में ठीक ही कहा है कि 'बाह्याचार' की निरथक पूजा और संस्कारों की विचारहीन गुलामी कबीर को पसन्द नहीं थी। " डॉ. श्यामसुन्दर दास ने कबीर ग्रन्थावली की भूमिका में ठीक लिखा है, कबीर का सारा जीवन अन्धविश्वासों का विरोध करने में ही बीता था। "

कबीर ने जप–तप, तीर्थ–यात्रा, मूर्तिपूजा इत्यादि कर्मकांडों को अन्धविश्वास मानकर विरोध किया है। नाभादास ने भक्तमाल (1558) में कबीर के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है, "जोग, जग्य, व्रत, दान, भजन बिनु तुच्छ दिखाये। " डॉ. परशुराम चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक " उत्तरी भारत की सन्त परम्परा " के पृष्ठ 182 पर कबीर के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है, ... इनकी रचनाओं मे बहुधा तीर्थ, व्रत, भेष, मूर्तिपूजा जैसी बाह्य बातों के प्रति इनकी अनास्था लक्षित होती है और अवतारवाद एवं शास्त्रविहित नियमों के प्रति विरोधाभास भी दिखाई पड़ता है। " कर्मकांडो के सम्बन्ध में कबीर साहब का एक दोहा इस प्रकार है–

जप, तप, पूजा, अरचा, जोगि जग बौराना
कागद लिखी–लिखी जगत भुलाना
मन ही मन समान । "

तीर्थयात्रा की कबीर ने जो भर्त्सना की है उससे बहुतों की भौंहे तन जाती हैं। वे कहते हैं

तीरथ गये तो वहि जूड़े पानी न्हाय ।
कह कबीर सन्तों सुनों, राक्षस ह्वै पछिताय ।।
तीरथ भई विख वेलरी रही जुगन जुग छाय ।
कबिरन मूल निकंदियो, कौन हलाहल खाय ।।

छूत–छात सभी धर्मों, विशेषकर उनके आंरमिक स्तर पर मिलता है, पर हिन्दू धर्म में वह इस तरह समाया हुआ है कि अनेक प्रयासों और अनगिनत हानियों के बावजूद उसका पिण्ड छोड़ते नहीं दिखता। जन साधारण ही इससे ग्रसित हो ऐसी बात नहीं है, बड़े से बड़े धर्माचार्य भी इसकी पहुंच से दूर नहीं है। कबीर के समय में तो इसकी गिरफत और भी कड़ी थी। वाराणसी के तथाकथित साधु–सन्तों को निरूपित करते हुये कबीर कहते हैं, "मुझे ऐसे सन्त अच्छे नहीं लगते जो टोकरे भर–भर कर पेड़े गटक जाते हैं। बरतन मांजकर ऊपर खाना खाते हैं कि किसी की भोजन पर छाया न पड़ जाए और

लकड़ी धोकर जलाते हैं।

नहीं है, बड़े से बड़े धर्माचार्य भी इसकी पहुंच से दूर नहीं है। कबीर के समय में तो इसकी गिरफत और भी कड़ी थी। वाराणसी के तथाकथित साधु–सन्तों को निरूपित करते हुये कबीर कहते हैं, "मुझे ऐसे सन्त अच्छे नहीं लगते जो टोकरे भर–भर कर पेड़े गटक जाते हैं। बरतन मांजकर ऊपर खाना खाते हैं कि किसी की भोजन पर छाया न पड़ जाए और लकड़ी धोकर जलाते हैं।

छूत की व्यापकता की ओर संकेत करते हुए कबीर साहब ने कहा है– " जल में छूत है, थल में छूत है और ग्रहण के अवसर पर किरणों मे भी छूत है, जन्म में भी छूत है और फिर मरने मे भी छूत है। कह तो रे पंडित कौन पवित्र है ? आंखों में भी छूत है, कानों में भी छूत है, उठते–बैठते तुझे छूत लगती है। यहां तक कि भोजन में भी छूत है। " पर छूत की भावना सर्वाधिक चूल्हा–चौका में पाया जाता है । मजाक में तीन कनौजिया तेरह चूल्हा कहकर इसकी पराकाष्ठा की ओर लोग संकेत करते पाये जाते हैं। कबीर ने कहा है,

" एकै पवन, एक ही वाणी,
करि रसोई न्यारी जानी।
माटी सूँ माटी ले पोती,
लांगी कहों कहों कहा छू छोती।
धरती लीपि परित्तर कीन्हीं,
छोति उपाय लीक विचि दीन्ही।
या का हम सूँ करों विचारा क्यों भव तीरहौं,
इति, आचारी । "

छूत–छात चूल्हा या व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित होता तो कुछ बात नहीं थी, पर उसका रुप जटिल और समाज तक फैला हुआ था। अतः कबीर ने इसे गंभीरता से लिया जिसके संकेत उनके निम्नलिखित पद से मिलत है–

" पंडित, देखा मन मो जानी।
कहु धौ छूत कहाँ ते
उपजी तबहिं छूत तुम मानी।
नाद्र बिन्दू रुधिर एक
संगै घट ही में घट सज्जै।
अष्ट कमल को पुहुयी आई कह ।
यह छूत उपज्जै।
लख चौरासी बहुत वासना
सो सब सरियों माटी।
एकै पाट सकल बैठारे सीचिं लेत धौं काटी।
छूतहि जेवन, छूतहि
अचवन छूतहि जग उपजाया।
कह कबीर ते छूत विवर्जित
जाके संग न माया। "

कबीर जाति, वर्ण और आश्रम व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे। नामादास ने अपनी उपरोक्त पुस्तक "भक्तमाल" में कबीर के बारे में आगे लिखा है कबीरा राखी नहीं, वर्णाश्रम षट दरसनी। " कबीर उस वैदिक सिद्धान्त के नहीं मानते थे कि चार वर्णों–ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति ब्रह्मा के क्रमशः मुख, भुजा, जाँघ और पांव से हुई है।

इस सम्बन्ध में उनका एक पद का अंश इस प्रकार है–

" हाथ, पांव, मुख, जांघ ते झूठी जानो बात " उनका तो विश्वास था, " पांव तत्व का पूतरा, रज बीरज की बून्द । एकै घाटी नीसरा, ब्राह्मण क्षत्री सूद। " कबीर के एक बहुत चर्चित पद का भावार्थ है कि यदि कोई ब्राह्मण गर्व करता है कि वह तो ब्राह्मणी की कोख से उत्पन्न हुआ है तो इसमें कोई विशेष तुक नहीं क्योंकि उसके और दूसरों की जन्म प्रक्रिया भी एक जैसी ही है। उन्होंने आगे कहा है, " यदि एक काली और सफेद गाय के दूध के रंग में कोई फर्क नहीं है तो उसी प्रकार हमारे कैसे लहु, तुम्हारे कैसे दूध, तुम कैसे ब्राह्मण हम कैसे सूद। " इस सम्बन्ध में कबीर का एक और पद है जिसके उदाहरण का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। वह इस प्रकार है–

" माटी एक सकल संसारा, बहु विध भांडे घड़े, कुम्हारा ।
एक बून्द एक मल मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जोत से सबै उत्पन्न, कौन ब्राह्मण कौन सूदा ।।

किसी व्यक्ति के बड़े–छोटे होने का कबीर का मापदंड जाति नहीं, कर्म था। इस सम्बन्ध में उनका कहना था–

" ऊंचे कुल क्या जनमिया,
जो करणी ऊंच न होई ।
सोवन कलस सुरै भरया,
साधू निन्धा सोई ।। "

कबीर की तो मान्यता थी कि किसी की भी जाति नहीं पूछनी चाहिए। साधुओं को माध्यम से उन्होंने अपनी इस बात को यों कहा है–

सन्त न जाति पूछो निर्गुनिया। " वे कहते हैं : जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान ।" क्योंकि जाति से न कोई ऊंच है न कोई नीच। " नहि कोऊ ऊंचा नहि कोई नीचा। जाका प्यंड ताही का सींचा। " आचार्य द्विवेदी ने अपनी उपरोक्त पुस्तक "कबीर" पृष्ठ 186 पर कबीर के सम्बन्ध में यहाँ तक कहा है– " वे मनुष्य मात्र को समान मर्यादा का अधिकारी मानते थे, व्यक्तिगत, जातिगत, कुलगत, आचारगत श्रेष्ठता का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था। "

कबीर का व्यक्तित्व महान और बहुमुखी था। अतः उनके मूल्यांकन के सम्बन्ध में लेखकों और आलोचकों में मतभेद होना लाजिमी है। कई उन्हें महाकवि मानते हैं तो कई मध्य युग के विद्रोही जन कवि। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी उन्हें महान मानते हैं, पर भक्त के रूप में। कबीर के काव्यत्व तथा समाज सुधार के रूप को वे एक बाईप्रोडक्ट मानते हैं। फोकट का माल जो, " कोलतार और सीरे की भांति और चीजों को बनाते–बनाते अपने आप बन गया है। पर डॉ. रामकुमार वर्मा कबीर को विश्व कवि के अलावा एक उच्च कोटि का समाज सुधारक मानते हैं। अपने ग्रन्थ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास का पृष्ठ 264 पर वे लिखते हैं, " यद्यापि कबीर के उपदेश धार्मिक सुधार तक है क्योंकि भारतीय धर्म के अन्तर्गत " दर्शन ', नैतिक आचरण एवं कर्मकांड तीनों का समावेश है। " इसी तरह डॉ. परशुराम चतुर्वेदी कबीर को एक सर्वागीण सामाजिक क्रान्तिकारी मानते हैं। अपनी पुस्तक उत्तरी भारत की सन्त परम्परा के पृष्ठ 218 पर वे कहते हैं– "ये जीवन के किसी विशेष पहलु पर ही अधिक जोर न देकर उसका पूर्णतः कायापलट कर देना चाहते थे। इन्हें परलोक जैसे काल्पनिक प्रदेश में आस्था नहीं थी। ये इहलोक को ही आदर्श व्यक्तियों के प्रभाव से स्वर्ग बना दिए जाने में विश्वास रखते थे । "

सर विलियम हंटर ने कबीर को 15वीं सदी का भारतीय लूथर बताया है। कबीर ने संघर्षरत हिन्दू और इस्लाम धर्म के ठेकेदारों–काजी और मुल्ला एवं पंडित और पुजारियों के बाह्याचारों तथा अन्धविश्वासों का खंडन करते हुए पूछा,– " ये दो जगदीश कहाँ से आये ? क्या अल्लाह, राम, और करीम उसी परमेश्वर के विभिन्न नाम नहीं हैं ? और पूजा नमाज क्या उसी परवरदिगार की इबादत के अलग–अलग ढंग नही है ? " इस तरह अपने विचारों और वाणियों द्वारा आज से लगभग 500 वर्ष पहले उन्होंने एक धर्मनिरपेक्ष समाज की कल्पना ही नहीं की, नींव भी रखी। सामन्तवाद के विरुद्ध सदियों से चल रही लड़ाई को वाणी देकर " साई के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय " का नारा बुलन्द करके कबीर ने एक नये युग का सूत्रपात किया, जहाँ लोग मानव अधिकारों, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक का उपभोग कर सकें। धार्मिक अधिकारों की तत्कालीन लड़ाई अपने में सामाजिक अधिकारों और आर्थिक न्याय की माँग को समेटे हुई थी। कबीर सचमुच एक नये युग के प्रवर्तक थे, युग निर्माता थे।

साभार – भारत के सामाजिक क्रान्तिकारी लेखक देवेन्द्र कुमार बेसन्तरी

आनन्द मोहन
संयुक्त निदेशक
हथकरघा, कानपुर

अजीत कुमार
सहायक अभियन्ता, के.डी.ए., कानपुर

अध्याय – 15 अशुचि और अछूत

I

अस्पृश्यता अस्तित्व में कब आई? कट्टर या रूढ़िवादी हिन्दुओं का कहना है कि यह अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही है। अपने कथन के आधार के समर्थन में उनका कहना है कि छुआछूत का माना जाना न केवल स्मृतियों में मिलता है जो कि जरा पीछे की है। किंतु धर्म सूत्रों में भी है, जो कुछ लेखकों के मत से ईसा से कुछ शताब्दियों के पूर्व के हैं।

छुआछूत की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए जिस प्रश्न से आरंभ करना होगा, वह यह है कि क्या यह प्रथा इतनी पुरानी है, जितनी पुरानी यह कही जाती है?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें सूत्रों का निरूपण करना होगा जिससे हम इस बात का निर्णय कर सकें कि जब धर्म सूत्र अस्पृश्यता और अछूतों की बात करते हैं, तो उनका तात्पर्य क्या है? क्या वे जिस वर्ग के लिए अछूत शब्द का प्रयोग करते हैं वह उन्ही में है जिन अर्थों में हम आज अछूत शब्द का प्रयोग करते हैं?

पहले प्रश्न को ही पहले लें। धर्म सूत्रों का निरूपण करने से निस्संदेह इस बात का पता लगता है कि उनमें से एक वर्ग का वर्णन है जिसे वे अस्पृश्य कहते हैं। इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि अस्पृश्य शब्द का अर्थ है अछूत। तो भी यह प्रश्न बाकी रहता है कि क्या धर्म सूत्रों के अस्पृश्य वे ही हैं जो आधुनिक भारत के अस्पृश्य हैं? यह प्रश्न महत्वपूर्ण बन जाता है, जब हमें मालूम होता है कि धर्म सूत्र ऐसे ही और भी कई शब्दों का प्रयोग करते हैं जैसे अन्त्य, अन्त्यज, अन्त्यवासिन तथा बाह्यवाद की स्मृतियों में भी इन शब्दों का प्रयोग किया गया है कि भिन्न–भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया गया है इसे जान लेना उपयोगी होगा। नीचे की तालिका से यह उद्देय पूरा होता है :–

1. अस्पृश्य

धर्म सूत्र	स्मृति
1. विष्णु 5, 104	1. कात्यायन मंत्र 433, 783

2. अन्त्य

धर्म सूत्र	स्मृति
1. वशिष्ठ (16,30)	1. मनु 4.79, 8.68
2. आपस्तम्ब (3.1)	2. याज्ञवल्क्य 1–148, 197
	3. अत्रि 25
	4. लिखित 92

3. बाह्य

धर्म सूत्र	स्मृति
1. आपस्तम्ब 1.2.39.18	1. मनु 2.8
2. विष्णु 16.14	2. नारद 1.155

4. अन्त्यवासिन

धर्म सूत्र	स्मृति
1. गौतम 31.23.32	1. मनु 4–79, 10–39
2. वशिष्ठ 18.3	2. महाभारत की शांति पर्व 141.29–32
	3. मध्यमांगिरस (मिताक्षरा में उदद्धत 3.2801

5. अन्त्यज

धर्म सूत्र	स्मृति
1. विष्णु 36,7	1. मनु 4–61, 8–279
	2.याज्ञवल्क्य स्मृति 12-73
	3.वृहद्‌यम स्मृति, याज्ञवल्क्य पर (मिताक्षरा में उद्‌धृत) 3–260
	4. अत्रि 199
	5. वेद व्यास 1.12.12

II

दूसरा प्रश्न है कि क्या अन्त्य, अन्त्यज, अन्त्यवासिन तथा बाह्य शब्दों से वही बोध होता है जो अर्थ अछूत से। दूसरे शब्दों में क्या यह एक वर्ग से लोगों के लिए भिन्न–भिन्न नाम हैं?

यह दुर्भाग्य की बात है कि धर्मसूत्र इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ है। अस्पृश्य शब्द दो जगह आया है। (एक सूत्र में एक बार और फिर स्मृति में एक बार) लेकिन एक भी जगह उन जातियों की गिनती नहीं की गई, जिनका यह शब्द द्योतक है। यही स्थिति अन्त्य शब्द के बारे में है। यद्यपि अन्त्य शब्द छः जगह आया है (दो सूत्रों में और चार स्मृतियों) लेकिन उनमें किसी स्थल पर भी यह नहीं लिखा है कि इस शब्द के अंतर्गत कौन–कौन जातियां आती हैं? इसी तरह बाह्य शब्द चार जगह आया है। (दो सूत्रों में और दो स्मृतियों में) अन्त्यवासिन तथा अन्त्यज ये दोनों शब्द अपवाद रूप हैं। किंतु यहां भी किसी धर्म सूत्र में उनकी गिनती नहीं है, केवल स्मृतियों में उनकी गिनती है। अन्त्यवासिन की गिनती मध्यमंगिरस नामक स्मृति में दी गई है और अन्त्यज की अत्रि स्मृति तथा वेद व्यास स्मृति में। वे कौन हैं। यह नीचे तालिका में स्पष्ट हो जाएगा:–

अन्त्यवासिन	अन्त्यज	
मध्यमंगिरस	अत्रि	वेद व्यास
1. चाण्डाल	1. नट	चाण्डाल
2. श्वपक	2. मेद	श्वपक
3. छत्त	3. भिल्ल	नट
4. सूत	4. रजक	मेद
5. वैदेहिक	5. चर्मकार	भिल्ल
6. मागद	6. बुरूद	रंजक
7. अयोगव	7. कैवर्त	चर्मकार
		विराट
		दास
		भट्ट
		कोलिक
		पुष्कर

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि जहां तक अन्त्यवासिन और अन्त्यज शब्दों के प्रयोग की बात है उसमें न तो कहीं कुछ निश्चयात्मक है और न कहीं किसी प्रकार का अर्थ साम्य ही है। उदाहरण के लिए चाण्डाल और श्वपाक दोनों ही मध्यमंगिरंग और वेदव्यास के अनुसार अन्त्यवासिन और अन्त्यजों में भी गिने गए हैं। लेकिन जब मध्यमांगिरस की अत्रि के साथ तुलना की जाती है तो ये भिन्न श्रेणियों में विभक्त दिखाई देते हैं। यही बात अन्त्यज के लिए भी सत्य है उदाहरण के लिए वेदव्यास के अनुसार 1. चाण्डाल और 2. श्वपाक अन्त्यज हैं किंतु अत्रि के अनुसार वे अन्त्यज नहीं हैं। फिर अत्रि के अनुसार बुरूद और कैवर्त अन्त्यज है किंतु वेदव्यास के अनुसार वे अन्त्यज नहीं हैं। फिर वेद व्यास के अनुसार (1) विराट, (2) दास, (3) भट्ट, (4) कोलिक, (5) पुष्कर अन्त्यज हैं –

किंतु अत्रि के अनुसार नहीं।

इसका सार इतना ही है न तो सूत्रों से ही हमें यह निश्चय करने में कुछ सहायता मिलती हैं कि अस्पृश्य कौन थे और ना ही स्मृतियों से। इसी प्रकार धर्म सूत्र और स्मृतियां इस बारे में भी हमारी कुछ सहायता नहीं करती कि जो वर्ग अन्त्यवासिन , अन्त्यज अथवा बाह्य कहलाते थे क्या वे अस्पृश्य ही थे अथवा नहीं? क्या कोई दूसरा उपाय है जिससे यह निर्णय हो सके कि इनमें से कोई एक भी वर्ग अस्पृश्य अथवा अछूत की श्रेणी में आता है या नहीं? बेहतर तो यह होगा यदि हम इनमें से प्रत्येक वर्ग के बारे में जो भी जानकारी प्राप्त है, उसे एकत्र कर लें।

बाह्य को ही लें। वे कौन हैं? वे क्या हैं? क्या वे अछूत हैं? मनु ने उनका उल्लेख किया है उनकी स्थिति समझने के लिए मनु की सामाजिक वर्गीकरण की योजना का उल्लेख करना आवश्यक है। मनु लोगों को अनेक वर्गों में विभक्त करता है। पहले तो वह (1) वैदिकों (2) दस्युओं का वर्गीकरण करता है। इसके आगे वह वैदिकों को चार उप वर्गों में विभाजित करता है:–

(1) जो चातुर्वर्ण्य के भीतर है

(2) जो चातुर्वर्ण्य के बाहर है

(3) व्रात्य

(4) पतित या जाति से बहिष्कृत है।

कोई आदमी चातुर्वर्ण्य के अंदर गिना जाए या नहीं, वह इस बात पर निर्भर करता था कि उसके माता–पिता का वर्ण क्या है? यदि वह समान वर्ण के माता–पिता की संतान है तो वह चातुर्वर्ण्य के अंदर गिना जाता था। यदि वह अलग–अलग वर्ण के माता–पिता की संतान हुआ जिसे मिश्रित विवाह का परिणाम कह सकते हैं अथवा जिसे मनु वर्ण संकर कहता है तो वह चातुर्वर्ण्य से बाहर माना जाता था। जो चातुर्वर्ण्य के बाहर माने गए हैं मनु ने उसके फिर दो भेद किए हैं। (1) अनुलोग, (2) प्रतिलोम। अनुलोम वे जिनके पिता ऊंचे वर्ण के किंतु माता नीच वर्ण की और प्रतिलोम उससे उल्टे अर्थात जिनकी माता ऊंचे वर्ण की और पिता नीचे वर्ण के। यद्यपि चातुर्वर्ण्य के बाहर होने के कारण अनुलोम तथा प्रतिलोम दोनों समान ही थे तो भी मनु ने दोनों में भेद किया है। अनुलोमों को वह वर्ण बाह्य अथवा केवल बाहर कहता है और प्रतिलोम को हीन। "हीन" बाह्य लोगों से निचले दर्जे के हैं लेकिन न बाह्य ही मनु की दृष्टि से अछूत हैं और न हीन ही।

अन्त्यों का एक वर्ण के रूप में मनुस्मृति के श्लोक 4. 79 में उल्लेख किया गया है किन्तु मनु उनकी गणना नहीं करते। मेधातिथि ने अपने भाष्य में बताया है कि अन्त्य का अर्थ म्लेच्छ है जैसे भेद इत्यादि। बुलहर ने अन्त्य का अनुवाद हीन जाति के आदमी के रूप में किया है।

इस प्रकार अन्त्यों के अछूत होने की किसी तरह पुष्टि नहीं होती। अधिक संभव यही है कि यह नाम उन लोगों को दिया गया था जो गांव के अंत में रहते थे। उनको नीच जाति के गिने जाने के कारण बृददारण्यक उपनिषद की कथा में आता है, जिनका काणे ने उल्लेख किया है। कथा इस प्रकार है:–

"देवताओं और असुरों में संग्राम हुआ। देवताओं ने सोचा कि वे उद्‌गी उद्‌गीन्तक द्वारा असुरों पर विजयी हो सकते हैं। इसमें उद्धरण है कि इस देवता (प्राण) ने पाप जो इन देवताओं के लिए मृत्यु था, को इन देवों (वाक् आदि) के एक ओर फेंक कर देवताओं के अंत में पहुंचा दिया। इसलिए किसी को आर्यों की सीमा के बाहर नहीं जाना चाहिए न दिशाओं के अंत में (गृह निवासों के अन्त में) उसे यह विचार करना चाहिए कि ऐसा करने से वह पाप मन अर्थात काल के कराल गाल में जा सकता है।"

अन्त्य शब्द का अर्थ इस उद्धरण में आने वाले "दिशाम अंत" के अर्थ में आया है। यदि दिशाम अंत का अर्थ गांव की सीमा के सिरे पर लिया जा सकता है और उसे खींचतान कर निकाला हुआ अर्थ न समझा जाए तो अन्त्य शब्द के मूल अर्थ की कुछ व्याख्या हमारे हाथ लग जाती है। इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि अन्त्य लोग अछूत हैं। इससे इतना ही अर्थ निकलता है कि वे गांव की सीमा पर रहते थे।

जहां तक अंत्यजों की बात है उनके बारे में जो कुछ हम जानते हैं, वह उनके अछूत होने की बात का खंडन करने के लिए पर्याप्त है। इन कुछ बातों की ओर ध्यान दिया जा सकता है।

महाभारत के शांति पर्व (109.9) में अन्त्यजों के सैनिक होने का उल्लेख है। सरस्वती विलास के अनुसार पितामह ने रजकों की सात जातियों की बात कही है, जो प्रकृति के रूप में अन्त्यजों में गिने जाते थे। प्रकृति का अर्थ धोबी आदि व्यावसायिक श्रेणियां हैं यह बात शक सम्वत् 622 के भिल्लम द्वितीय के संगमनेर (ताम्रपत्र) से स्पष्ट हो जाती है। इस ताम्रपत्र में 18 प्रकृतियों को दान में दिए गए एक गांव का उल्लेख है। वीरमित्रोदय का कहना है कि श्रेणी का अर्थ रजक आदि अठारह जातियां है जो सामूहिक तौर पर अंत्यज कहलाती है। इन बातों के रहते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि अंत्यज लोग अछूत माने जाते थे।

अब अन्त्यवासिनों को लें। वे कौन थे। क्या वे अछूत थे? अन्त्यवासिन शब्द का दो भिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है। इसका एक अर्थ है वह ब्रह्मचारी जो गुरु के पास उसके घर रहता है। ब्रह्मचारी के लिए अन्त्यवासिन शब्द आया है। शायद अंत में भोजन करने वाला होने से अन्तवासिन कहलाता हो। जो भी हो, यह निर्विवाद है कि इस संबंध में इस शब्द का अर्थ अछूत नहीं हो सकता तो हो ही कैसे सकता है जब केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही ब्रह्मचारी बन सकते है? दूसरे अर्थ में वह एक लोक समूह का द्योतक है किंतु इसमें भी इस बात में संदेह है कि यह शब्द अछूत का पर्याय था।

वशिष्ठ धर्म सूत्र (18.3) के अनुसार वे शूद्र पिता और वैश्य माता की संतान हैं। किंतु मनु 15.39 के मत के अनुसार ये चाण्डाल पिता और निषाद माता की संतान है। उनके वर्ग के संबंध में मिताक्षरा का कहना है कि अन्त्यवासिन अन्त्यजों का ही एक उपवर्ग है। इसलिए अन्त्यजों के बारे में जो बात सत्य है, वह अन्त्यवासिन के बारे में भी सत्य समझी जा सकती है।

III

यदि विषयांतर कर अपने प्राचीन साहित्य में अन्त्यवासिन, अन्त्य तथा अन्त्यज आदि की सामाजिक अवस्था के बारे में प्राप्त जानकारी का विवरण लें तो स्पष्ट है कि हमें यह कहने में संकोच है कि अछूत शब्द के आधुनिक अर्थ में वे अछूत थे, लेकिन तो भी ऐसे लोगों की भरपाई के लिए जिन्हें अभी संदेह बाकी हो, एक दूसरे दृष्टिकोण की भी समीक्षा की जा सकती है। यह मान कर कि उन्हें अस्पृश्य कहा गया है, हम यह पता लगाने का प्रयत्न करें कि धर्म सूत्रों के समय में अस्पृश्य शब्द का क्या लाक्षणिक अर्थ था।

हम उद्देश्य की पूर्ति के लिए धर्म शास्त्रों के बनाए हुए प्रायश्चित के नियमों को लें। इनका अध्ययन करने से हम यह देख सकेंगे कि क्या धर्म सूत्रों के समय में भी अस्पृश्य शब्द से भी वही अर्थ प्रकट होता है जो आज है।

इस उदाहरण के लिए अस्पृश्य कहलाने वाली एक जाति चाण्डाल को लें। पहले तो यह बात ध्यान में रखने की है कि चाण्डाल शब्द से किसी जाति विशेष का भान नहीं होता। यह एक दूसरे से भिन्न कई तरह के लोगों के लिए एक शब्द है। शास्त्रों में कुछ मिलाकर पांच तरह के चाण्डालों का वर्णन है। वे हैं:–

(1) शूद्र पिता और ब्राह्मण माता की संतान
(2) कुंवारी कन्या की संतान
(3) सगोत्र स्त्री की संतान
(4) संन्यासी होकर पुनः गृहस्थ होने वाले की संतान
(5) नाई पिता और ब्राह्मण माता की संतान

यह कहना कठिन है कि किस चाण्डाल का शुद्ध होना आवश्यक है। हम यह मान लेते हैं कि सभी चाण्डालों का शुद्ध होना आवश्यक कहते हैं। शास्त्रों ने शुद्धि के क्या नियम ठहराए हैं:–

"जाति बहिष्कृत, एक चाण्डाल, सूतक के कारण अपवित्र स्त्री, मासिक धर्म वाली स्त्री, मुर्दा तथा उनको स्पर्श करने वाले लोगों का यदि स्पर्श हो जाए तो सचैल (वस्त्रों सहित) स्नान से पवित्र हो सकेगा।"

"यह सतंभ, चिंता, श्मशान भूमि, रजस्वला स्त्री, अथवा सद्यप्रसूता स्त्री, अपवित्र आदमी अथवा चाण्डाल को स्पर्श करने वाले को पानी में डुबुकी लगा कर स्नान करना होगा।"

बौधयन वशिष्ठ से सहमत हैं, क्योंकि उसके धर्म सूत्र (प्रश्न–1, अध्याय 5, खंड–6, श्लोक–5) का कहना है:–

अपवित्र स्थान पर लगा हुआ वृक्ष, चिता, यज्ञ स्तंभ, चाण्डाल तथा वेद बेचने वाले को यदि कोई ब्राह्मण स्पर्श करेगा तो उसे सचैल स्नान करना होगा।"

मनु स्मृति के नियम इस प्रकार हैः–

5.85 जब ब्राह्मण किसी चाण्डाल, किसी रजस्वला स्त्री, किसी पतित, किसी प्रसूता, किसी शव अथवा जिसने शव का स्पर्श किया हो, ऐसे किसी का स्पर्श करता है तो स्नान करने से शुद्ध होता है।

5.131 कुत्तों द्वारा मारे गए (पशु) का मांस, किसी अन्य मांसाहारी पशु द्वारा मारे गए प्राणी का मांस अथवा चाण्डाल द्वारा मारे गए प्राणी का मांस पवित्र होता है।

5.143 किसी वस्तु को किसी भी ढंग से ले जाता हुआ कोई व्यक्ति यदि किसी अपवित्र व्यक्ति या वस्तु से छू जाएगा तो उस चीज को बिना रखे ही यह आचमन करने से पवित्र हो जाएगा।

धर्म सूत्रों तथा मनुस्मृति से उद्धृत इन उद्धरणों से निम्नलिखित बातें स्पष्ट हो जाती हैं:–

1. चाण्डाल के स्पर्श से केवल ब्राह्मण ही अशुद्ध होता था।

2. संभवतः संस्कार विशेष के ही अवसर पर शुद्धि–अशुद्धि का ख्याल किया जाता था।

IV

यदि ये निष्कर्ष ठीक हैं तो यह अशुद्धि का ही मामला है जो अस्पृश्यता से बिल्कुल भिन्न है। अपवित्र और अछूत में भिन्नता बिल्कुल स्पष्ट हो। अछूत सभी को अपवित्र करता है, किन्तु अशुद्ध केवल ब्राह्मण को अपवित्र करता है। अशुद्ध का स्पर्श केवल संस्कारों के अवसर पर ही अपवित्रता का कारण बनता है, किन्तु अछूत का स्पर्श सदैव कारण बनता है।

एक और तर्क है जिसका उल्लेख अभी तक नहीं किया गया है। इससे यह मत सर्वथा निरर्थक सिद्ध हो जाता है कि धर्म सूत्रों में जिन जातियों के नाम आए हैं वे अछूत थीं। यह तर्क अध्याय 2 में आर्डर–इन–कौसिल की जातियों की जो सूची दी गई है और इस अध्याय में स्मृतियों के आधार पर बनाई गई सूची की तुलना करने से उत्पन्न होता है। इस तुलना से क्या प्रकट होता है?

1. स्मृतियों में दी गई जातियों की अधिक से अधिक संख्या केवल 12 है जबकि आर्डर–इन–कौंसिल में इन जातियों की संख्या 429 है।

2. ऐसी जातियां हैं जिनके नाम आर्डर–इन–कौंसिल में तो हैं किंतु स्मृतियों में नहीं हैं। कुल 429 में से 427 जातियां ऐसी हैं जिनके नाम स्मृतियों में हैं ही नहीं।

3. ऐसी जातियां है जिनके नाम स्मृतियों में है, किन्तु आर्डर–इन–कौंसिल की सूची में नहीं हैं।

4. ऐसी केवल एक जाति ऐसी है जिसके नाम दोनों में है। वह जाति है चमार।

जो यह नहीं मानते कि अपवित्र और अछूत अलग–अलग हैं वे उक्त बातों से अपरिचित प्रतीत होते हैं। लेकिन उन्हें यह बात स्वीकार करनी ही पड़ेगी। ये बातें इतनी विशेष और इतनी प्रभावोत्पादक हैं कि हमें इस बात को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अपवित्र और अछूत भिन्न–भिन्न हैं। पहली बात को लें। इससे एक महत्वपूर्ण प्रश्न पैदा होता है।

यदि दोनों सूचियों में एक ही वर्ग के लोगों का उल्लेख हो तो इन दोनों में यह भेद और इतना अधिक भेद क्यों हैं? यह कैसे है कि शास्त्रों में जिन जातियों का नाम आया है वे आर्डर–इन–कौंसिल में हैं ही नहीं? दूसरी ओर आर्डर–इन–कौंसिल में जिन जातियों का नाम आया है वे शास्त्रों की सूची में है ही नहीं? यह ऐसी कठिनाई है जिसे हल करना होगा।

यदि हम यह मान लें कि इससे एक ही वर्ग के लोगों का तात्पर्य है तो स्पष्ट ही है कि आरंभ में जो छुआछूत केवल बारह जातियों तक सीमित थी वह 429 जातियों में फैल गई। इस अस्पृश्यता के जंजाल के विस्तार का क्या कारण है? यदि ये 429 जातियां उसी वर्ग की हैं जिस वर्ग की बारह जातियों का शास्त्रों में उल्लेख हैं तो किसी भी शास्त्र में इन चार सौ उन्तीस जातियों का नाम क्यों नहीं है? यह हो ही नहीं सकता कि जिस समय शास्त्र लिखे गए उस समय इन चार सै उन्नतीस जातियो में से कोई एक भी जाति विद्यमान नहीं थी। यदि सब थीं तो कुछ तो अवश्य रहीं होंगी। तब जो थीं उनका भी नाम क्यों नहीं लिखा मिलता?

यदि यह मान कर चलें कि दोनों सूचियां एक ही वर्ग के लोगों की हैं तो इन प्रश्नों का कोई भी संतोषजनक उत्तर दे सकना टेढ़ी खीर है और यदि यह स्वीकार कर लें कि ये दोनों सूचियां दो भिन्न–भिन्न वर्गों के लोगों की हैं तो ये सब प्रश्न व्यर्थ जाते हैं। ये सूचियां भिन्न वर्गों के लोगों की हैं। क्योंकि शास्त्रों की सूचियां अपवित्र लोगों की हैं और आर्डर–इन–कौंसिल की सूची अछूत लोगों की है। यही कारण है कि दोनों सूचियां भिन्न हैं। दोनों सूचियों का भेद जो दूसरी बात से सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है इसी के पक्ष में है कि शास्त्रों में जिन वर्गों का वर्णन है वे केवल अपवित्र हैं। उन्हें आज के अछूत लोगों के साथ मिलाना भूल है।

अब दूसरी बात को लें। यदि अपवित्र और अछूत एक ही हैं तो ऐसा क्यों है कि 429 जातियों में से एकदम 427 जातियों का स्मृतियों को ज्ञान ही नहीं। स्मृतियों के समय में वे जाति रूप में विद्यमान रही ही होंगी। यदि अब अछूत हैं तो वे उस समय भी अछूत रही होंगी, तो तब की स्मृतियों में उनका नाम क्यों नहीं हैं?

अब तीसरी बात लें। यदि अपवित्र एक ही ओर वही हैं तो जिन जातियों का नाम स्मृतियों में आता है उनका नाम आर्डर–इन–कौंसिल की सूची में क्यों नहीं आया हैं? इस प्रश्न के केवल दो उत्तर हो सकते हैं। एक तो यह कि यद्यपि वे एक समय अछूत थे किंतु बाद में अछूत नहीं रहे। दूसरा यह कि दोनों सूचियों में ऐसी जातियों के नाम हैं जो एकदम भिन्न वर्ग की हैं। पहला उत्तर निराधार है क्योंकि छुआछूत तो सनातन है। समय न तो इसे मिटा सकता है न दूर ही कर सकता है। एकमात्र संभव उत्तर दूसरा ही है।

अब चौथी बात लें। इन दोनों सूचियों में एकमात्र चमार को ही क्यों स्थान मिला? इसका यह उत्तर नहीं हो सकता कि दोनों सूचियां एक ही वर्ग के लोगों की हैं। यदि यह उत्तर ठीक होता तो न केवल चमार, किंतु स्मृतियों की सूची में दी गई शेष सारी जातियों के नाम दोनों सूचियों में आए होते। लेकिन वे नहीं आए हैं। ठीक उत्तर यही है कि दोनों सूचियां दो भिन्न वर्ग के लोगों की हैं। अपवित्रों की सूची में से कुछ अछूतों की सूची में भी हैं। इसका कारण यही है कि जो एक समय अपवित्र थे वे ही बाद में अछूत हो गए। यह ठीक है कि चमार का नाम दोनों सूचियों में आता है लेकिन यह कोई इस बात का प्रमाण नहीं हो सकता कि अपवित्र और अछूत में कोई भेद नहीं। इससे यही सिद्ध होता है कि चमार जो किसी समय अपवित्र था बाद में अछूत बन गया। इसलिए उसका नाम दोनों सूचियों में शामिल करना पड़ा। स्मृतियों में वर्णित बारह जातियों में से अकेले चमारों को ही अछूत क्यों बनाया गया, इसका कारण समझना कठिन नहीं है। चमार और अन्य अपवित्र जातियों में जिस बात ने भेद की दीवार खड़ी की है यह बात गोमांसाहार है। जिस समय गो को पवित्रता का दर्जा मिला और गोमांसाहार पाप बन गया उस समय अपवित्र लोगों में जो मांसाहारी थे केवल वे ही अछूत बने। केवल चमार ही गोमांसाहारी जाति है इसलिए केवल इसी एक जाति का नाम दोनों सूचियों में आता है। चमारों के संबंध में जो प्रश्न है उसका उत्तर दो बातों के संबंध में निर्णायक है। छुआछूत इस बात का द्योतक है कि गोमांसाहारी ही अछूतपन का मूल कारण है और अपवित्र को अछूत से भिन्न करता है।

अस्पृश्यता और अपवित्रता एक ही नहीं है, इस बात का छुआछूत के काल निर्णय में बहुत महत्व है इसके बिना छुआछूत का समय निश्चित करने का प्रयत्न करना विषयांतर होगा।

साभार –
बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड – 14
पृष्ठ सं. 125 से 135
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

सेवा में,

नाम श्री.................................

पता ....

....

....